ऊषा सिन्हा

बनाम

दीनाराम व अन्य

(सिविल अपील संख्या 2008/1998)

14 मार्च, 2008

(सी. के. ठक्कर और मार्कंडेय काटजू, न्यायमूर्तिगण)

सिविल प्रक्रिया संहिता 1908 आदेश 21 नियम 29] नियम 96-102 सपठित धारा-151 एवं आदेश 39 नियम 01 व 02

01. डिक्री का निष्पादन- *प्रश्नगत सम्पत्ति को अपीलार्थी ने प्रतिवादीगण से क्रय किया था। जिनके विरूद्ध सम्पत्ति के स्वामित्व का वाद लंबित था। विचारण न्यायालय द्वारा एकपक्षीय डिक्री दी गयी।*

निष्पादन *- अपीलार्थी द्वारा प्रतिवादीगण से क्रय की गयी सम्पत्ति में अंश के लिए स्वामित्व के मुकदमे में डिक्रीधारक के विरूद्ध निषेधाज्ञा के लिए इस आशय का आवेदन किया कि अंतिम निपटारे तक निष्पादन पर रोक लगाई जावे। उक्त आवेदन निचली अदालत द्वारा खारिज कर दिया गया। निष्पादन न्यायालय के समक्ष स्थगन के लिए प्रस्तुत प्रार्थना पत्र पर कार्यवाही स्थगित की। उसकी निगरानी याचिका उच्च न्यायालय द्वारा*

अनुमोदित की गयी। उक्त आवेदन का सही होना अभिनिर्धारित किया। आदेश 21 नियम 102 सीपीसी साम्या एवं सद्विवेक पर आधारित है। अंतरिति को वाद संपत्ति क्रय करते समय सावधान रहना चाहिए। ऐसे निर्णीत ऋणी से, जो न्यायालय के समक्ष कार्यवाहियों के बारे में जानकारी रखता है, मुकदमे बाजी के लंबित रहने के दौरान वाद संपत्ति के खरीददार/क्रेता को विरोध करने या बाधा डालने का कोई अधिकार नहीं है। वाद के लंबित रहने के दौरान संपत्ति के क्रेता को डिक्री के निष्पादन कार्यवाही में जो कि सक्षम न्यायालय द्वारा पारित की गयी है, अवरोध करने या बाधा डालने का कोई अधिकार नहीं है। अंतरिति यदि बाधा उत्पन्न करता है तो वह आदेश 21 नियम 98 या 100 का लाभ नहीं ले सकता। निर्णीय ऋणी के कहने पर अंतरिति द्वारा किए गए प्रतिरोध को किसी भी व्यक्ति द्वारा उसके अधिकार में किए गए प्रतिरोध के रूप में नहीं माना जा सकता। '<u>विचाराधीन वाद का सिद्धांत</u>' प्रश्नगत संव्यवहार को आकर्षित करता है, इस प्रकार उच्च न्यायालय द्वारा निगरानी याचिका सही रूप से स्वीकार की थी। प्रार्थना पत्र आदेश 21 नियम 102 सीपीसी और धारा-52 संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 की पालना में था।

सिद्धांतः

'<u>डॉक्ट्राईन ऑफ लिस्पेंडेंस</u>' अर्थात विचाराधीन वाद के सिद्धांत का लागू होना।

शब्द और वाक्यांशः

निर्णीत ऋणी से अंतरिति-आदेश 21 नियम 102 सीपीसी, 1908 के संदर्भ में अर्थ-

प्रत्यर्थी ने कुछ संपत्तियों के संबंध में स्वामित्व के लिए प्रतिवादी संख्या 01 लगायत 05 के विरूद्ध वाद दायर किया। दौराने वाद लंबित रहते प्रतिवादी संख्या 04 व 05 ने कथित तौर पर अपना हिस्सा उन संपत्तियों में से अपीलार्थी को पंजीकृत विक्रय विलेख से बेच दिया। उसके पश्चात उक्त वाद में प्रतिवादीगण के विरूद्ध एकपक्षीय डिक्री पारित कर दी गयी। अपीलार्थी व अन्यों ने प्रत्यर्थी व अन्यों के खिलाफ वाद इस आधार पर प्रस्तुत किया कि वह उक्त सम्पत्ति की क्रेता होने से पूर्ण स्वामिनी है और प्रार्थना की, कि पूर्ववर्ती स्वामित्व वाद में जो डिक्री प्रत्यर्थी के पक्ष में पारित की गयी थी और उसे अकृत व शून्य घोषित किया गया था, प्रत्यर्थी उस संपत्ति में कोई अधिकार, स्वामित्व एवं हित नहीं रखता। इस दौरान प्रत्यर्थी, डिक्रीदार द्वारा निष्पादन याचिका, उनके पक्ष में पारित डिक्री के निष्पादन हेतु प्रस्तुत की। अपीलार्थी ने आदेश 39 नियम 01 व 02 में इस प्रार्थना के साथ आवेदन किया कि स्वामित्व का वाद जब तक अंतिम रूप से निस्तारित नहीं हो जाए, तब तक निष्पादन कार्यवाही को स्थगित किया जाये। उक्त प्रार्थना पत्र विचारण न्यायालय द्वारा खारिज किया गया। विचारण न्यायालय के आदेश से व्यथित होकर निष्पादन न्यायालय के

समक्ष, निष्पादन कार्यवाही को स्थगित किए जाने का प्रार्थना पत्र प्रस्तुत किया, जिसे निष्पादन न्यायालय ने स्वीकार किया। जिस पर प्रत्यर्थी ने उच्च न्यायालय में निगरानी याचिका प्रस्तुत की। उस निगरानी याचिका को उच्च न्यायालय द्वारा स्वीकार करते हुए निष्पादन न्यायालय के आदेश को अपास्त किया इसलिए यह अपील प्रस्तुत हुई।

अपीलार्थी ने विरोध किया कि उच्च न्यायालय ने प्रत्यर्थी की निगरानी याचिका को स्वीकार करने में और निष्पादन न्यायालय द्वारा निष्पादन कार्यवाहियों को स्थगित किए जाने वाले आदेश को अपास्त करके पूर्णतः गलती की है। निष्पादन न्यायालय सही था उसने परिस्थितियों पर विश्वास किया। उसने एकपक्षीय डिक्री को अपास्त करने के लिए पश्चातवर्ती वाद फाईल किया था। वाद के लंबित रहते समय उक्त वाद व निष्पादन कार्यवाही स्थगित होनी चाहिए थी, इसलिए तथ्यों के प्रकाश में निष्पादन न्यायालय ने उक्त आदेश पारित किया, अपीलार्थी द्वारा प्रस्तुत मुकदमा अंतिम निपटारे के लिए लंबित था, यह विचार योग्य एक सुसंगत तथ्य था और उस आदेश में उच्च न्यायालय को हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए था। उच्च न्यायालय ने यह आदेश दिया कि आदेश 21 नियम 102 सीपीसी को लागू करने और अपीलार्थी को सुरक्षा मांगने का कोई अधिकार नहीं है।

प्रत्यर्थी ने निवेदन किया कि निष्पादन न्यायालय आवेदन में सुनवाई के समय पूरी तरह से गलत था, जो अपीलार्थी ने विशेष तौर पर समान

आवेदन खारिज होने के पश्चात आदेश 21 नियम 29 सीपीसी में प्रार्थना पत्र प्रस्तुत किया और स्वामित्व के वाद के निपटारे तक निषेधाज्ञा का अनुतोष चाहा। पूर्ववर्ती वाद में यह स्वीकृत था कि प्रत्यर्थी द्वारा स्वामित्व का वाद किया गया था और तथाकथित विक्रय विलेख प्रतिवादी संख्या 04 और 05 ने निष्पादित कराया था और दूसरी तरफ अपीलकर्ता के मध्य वाद के लंबित रहने के दौरान विक्रय किया गया था, इसलिए 'वाद लंबिता' का सिद्धांत ऐसे विक्रय पर लागू होता है और संहिता का आदेश 21 नियम 102 उक्त विक्रय को आकर्षित करता है।

न्यायालय द्वारा अपील खारिज की गयी।

अभिनिर्धरित: 01. न्यायालय ने अपील खारिज करते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि आदेश 21 नियम 102 न्याय, साम्या व सद्विवेक पर आधारित है। ऐसा माना जाता है कि निर्णीत ऋणी को न्यायालय के समक्ष होने वाली कार्यवाहियों का पता होता है। अंतरिति को ऐसी सम्पत्ति क्रय करते समय जो मुकदमे की विषय वस्तु है, सावधान रहना चाहिए। धारा-52 संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 वाद लंबिता के सिद्धांत को मान्यता प्रदान करती है। उक्त नियम जमीनी हकीकत को ध्यान में रखकर बनाया गया है तथा इस प्रकार की सम्पत्ति के क्रेता की सहायता में हाथ बढ़ाने से इन्कार करता है, जिस सम्पत्ति के संबंध में मुकदमा लंबित हो यदि अनुचित असम्यक व अवांछित सुरक्षा प्रदान की जाती है तो

डिक्रीधारक कभी भी उसकी डिक्री के परिणाम व फल का अहसास नहीं कर पाएगा। हर बार जब डिक्रीधारक डिक्री के निष्पादन के लिए न्यायालय से निर्देश मांगता है तो निर्णीत ऋणी या उसका अंतरिती सम्पत्ति अंतरित करेगा और नया अंतरिती प्रतिरोध या बाधा उत्पन्न करेगा। उक्त स्थिति से बचने के लिए यह नियम बनाया गया है। उक्त उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए अभिव्यक्ति 'निर्णीत ऋणी से अंतरिती' के रूप में की गयी है। (पैरा संख्या 12 व 14)

विजयलक्ष्मी लेदर इण्डस्ट्रीज (पी) लिमिटेड बनाम के. नारायणन, ललिता एआईआर 2003 मद्रास 203-अनुमोदित।

बेलामी बनाम सबीन (1857) 1 डीजी और जे 566 : 44 ईआर 847- संदर्भित किया गया।

1.2 यह स्थापित विधि है कि मुकदमे के लंबित रहने के दौरान मुकदमे की सम्पत्ति में क्रेता को सक्षम न्यायालय द्वारा पारित डिक्री के निष्पादन का विरोध करने या बाधा डालने का कोई अधिकार नहीं है। 'वाद लंबिता' का सिद्धांत किसी पक्ष को उस सम्पत्ति के निपटारे से रोकता है जो मुकदमे की विषय वस्तु है। यह क्रेता के लिए रचनात्मक नोटिस के रूप में माना जाता है कि वह लंबित मुकदमे में पारित होने वाली डिक्री से बंधा हुआ है, इसलिए नियम 102 स्पष्ट करता है कि अंतरिती दौराने वाद

प्रतिरोध या बाधा कारित नहीं करनी चाहिए। वह यह घोषणा करता है कि यदि निर्णीत ऋणी के अंतरिती द्वारा दौराने वाद प्रतिरोध किया जाता है या बाधा कारित की जाती है तो वह संहिता के आदेश 21 नियम 98 या 100 का लाभ नहीं मांग सकता। यह न्यायालय *'सिल्वर लाईन फोरम'* में इस न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के प्रस्ताव से सम्मानजनक तौर पर सहमत है। यह इस सिद्धांत पर आधारित है कि मुकदमे के लंबित रहने के दौरान निर्णीत ऋणी से संपत्ति क्रय करने वाले व्यक्ति के पास डिक्री के निष्पादन का विरोध करने या बाधा डालने या आपत्ति करने के लिए कोई स्वतंत्र अधिकार नहीं है। कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान निर्णीत ऋणी के अंतरण के उदाहरण पर प्रतिरोध को प्रतिरोध नहीं कहा जा सकता। कोई व्यक्ति अपने ही अधिकारों में बाधा उत्पन्न कर दावे का न्याय निर्णयन कराने का हकदार नहीं है। (पैरा संख्या 18 व 21)

सिल्वरलाईन फोरम प्राईवेट लिमिटेड बनाम राजीव ट्रस्ट, (1998) एससीसी 723 और *सरविंदर सिंग बनाम दलीप सिंह,* (1996) 5 एससीसी 539-पर भरोसा किया गया।

1.3 नियम 102 का अवलंबन लेने के लिए डिक्रीधारक के लिए यह दर्शित करना पर्याप्त है कि कब्जे का विरोध करने वाला या बाधा उत्पन्न करने वाला व्यक्ति उस मुकदमे के शुरू होने के पश्चात सम्पत्ति पर उसके अधिकार का दावा कर रहा है, जिसमें डिक्री पारित की गयी थी और

निर्णीत ऋणी के विरूद्ध निष्पादन की मांग की गयी थी। यदि उक्त शर्त पूरी हो जाती है तो मामला नियम 102 की रिष्टि में आता है और ऐसा आवेदक संहिता के नियम 98 या 100 पर भरोसा नहीं कर सकता। (पैरा 22)

1.4 'वाद लंबिता' का सिद्धांत विचाराधीन संव्यवहारों पर लागू होगा और उच्च न्यायालय इस मामले में पूर्णतः सही था, कि मामला संहिता के आदेश 21 नियम 02 की परिधि में समाहित था। अपीलकर्ता उसके द्वारा दायर मुकदमे की लंबिता के लिए सुरक्षा की मांग नहीं कर सकती थी। निष्पादन न्यायालय द्वारा निष्पादन कार्यवाही पर रोक लगाना उचित नहीं था, इसलिए निष्पादन न्यायालय के आदेश को रद्द करने में उच्च न्यायालय ने कोई गलती नहीं की। (पैरा 23)

2.1 संहिता के आदेश 21 नियम 29 उन मामलों से संबंधित हैं जिनमें निर्णीत ऋणी द्वारा डिक्री धारक के खिलाफ वाद दायर किया गया। वाद लंबिता के मामलों में इसकी कोई प्रासंगिकता नहीं है, जिसमें संपत्ति का अंतरण निर्णीत ऋणी द्वारा किया गया है, जो कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान एक तृतीय पक्ष है। उच्च न्यायालय ने ठीक ही माना है कि अपीलकर्ता को मुकदमे के लिए अजनबी नहीं कहा जा सकता क्योंकि वह प्रतिवादी संख्या चार और पांच के माध्यम से अधिकार, स्वामित्व और हित का दावा कर रही थी। उनके खिलाफ मुकदमा लंबित था, इसलिए यह माना जाना चाहिए कि उसे उस मुकदमे के बारे में जानकारी है जो एक सक्षम

न्यायालय के समक्ष लंबित था और वाद संख्या 140/1999 को वर्तमान प्रत्यर्थी (अपीलार्थी के पूर्ववर्ती) के विरूद्ध लंबित था। (पैरा 24)

2.2 चूंकि अपीलार्थी दौराने वाद एक क्रेता है और उसे प्रतिरोध या बाधा उत्पन्न करने का अधिकार नहीं है। उसके अधिकारों को डिक्री में स्पष्ट नहीं किया गया है। संहिता के आदेश 21 नियम 102 की परिधि में आता है इसलिए वह उसके द्वारा दायर मुकदमे के लंबित रहने के दौरान निष्पादन का विरोध नहीं कर सकती। उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश को अवैध, गैरकानूनी या कानून के प्रतिकूल नहीं कहा जा सकता। (पैरा 24)

बेलामी बनाम सबीन, (1857) 1 डीजी और जे 566 : 44 ईआर 847 और *सिल्वरलाईन फोरम प्राईवेट लिमिटेड बनाम राजीव ट्रस्ट,* (1998) 3 एससीसी 723 संदर्भित किया गया।

[सिविल अपीलीय क्षेत्राधिकार: सिविल अपील संख्या 2008/1998।]

2004 के सिविल रिविजन संख्या 113 के उच्च न्यायालय पटना के अंतिम निर्णय व आदेश दिनांक 04.07.2006 से।

उपस्थिति:-

एस.बी. सान्याल, डॉ. के.डी. प्रसाद, डी.के. सिन्हा, ए.के. सिन्हा और सतीश, विद्वान अधिवक्तागण वास्ते अपलार्थी उपस्थित।

एस.बी. उपाध्याय, संतोष मिश्रा, प्रभास चंद्र यादव, शिवमंगल शर्मा और शर्मिला उपाध्याय, विद्वान अधिवक्तागण वास्ते प्रत्यर्थीगण उपस्थित।

न्यायमूर्ति सी के ठक्कर की ओर से न्यायालय का निर्णय दिया गया।

अनुमति दी गई।

02. वर्तमान अपील बाधा डालने वाले अपीलकर्ता (संक्षेप में अपीलकर्ता) द्वारा सिविल रिविजन संख्या 113/2004 में पटना उच्च न्यायालय द्वारा पारित 04 जुलाई, 2006 के निर्णय व आदेश के विरूद्ध दायर की गयी। आदेश के बाद उच्च न्यायालय ने प्रतिवादी संख्या 01 द्वारा यहां डिक्रीधारक (संक्षेप में प्रतिवादी) द्वारा दायर, संशोधन की अनुमति दी और सब-जज षष्टम, पूर्निया द्वारा पारित आदेश को अपास्त किया गया।

03. मामले के संक्षिप्त तथ्य यह है कि प्रतिवादी ने 10 अप्रैल, 1999 को अरूण चौधरी, 02. पूनम चौधरी, 03. सुखदेव सिंह, 04. शंभू, 05. विनोद कुमार के विरूद्ध वाद शीर्षक संख्या 140/1999 उपन्यायाधीश षष्टम, पूर्निया की अदालत में दायर किया। उक्त मुकदमे के लंबित रहने के दौरान प्रतिवादी संख्या 04 शम्भूप्रसाद और प्रतिवादी संख्या 05 विनोद कुमार ने उस सम्पत्ति में उनका, जिसके संबंध में मुकदमा लंबित था 15 फरवरी, 2000 को एक पंजीकृत विक्रय विलेख द्वारा अपीलकर्ता को बेच दिया गया।

24 मई, 2001 को वाद शीर्षक नंबर 140/1999 में प्रतिवादीगण के विरूद्ध एकपक्षीय डिक्री पारित की गयी। उपन्यायाधीश षष्टम पूर्निया द्वारा दिए गए फैसले में यह देखा गया कि प्रतिवादीगण की विधिवत तामील हुई थी, दैनिक समाचार पत्र में भी सम्मन का प्रकाशन किया था। प्रतिवादी उपस्थित नहीं हुए तब 10 अप्रैल, 2001 के आदेश द्वारा मामला एकपक्षीय सुनवाई हेतु नियत किया गया। वादी और उसके गवाहों को परीक्षित किया गया और उनकी साक्ष्य के आधार पर मुकदमे का फैसला सुनाया गया। यह माना गया कि वादी के पास वाद सम्पत्ति पर अधिकार और स्वामित्व था और वह अनुसूचि बी में दर्शायी गयी भूमि पर कब्जा पुनः प्राप्त करने का हकदार था।

04. अपीलकर्ता बिनय कुमार सिन्हा, पवन कुमार चौधरी और रतनदेव प्रसाद चैधरी ने प्रतिवादी दीनाराम और अन्यों के विरूद्ध सब-जज प्रथम, पूर्निया की अदालत में वाद शीर्षक संख्या 226/2001 दायर किया। वादपत्र में यह दावा किया गया कि अपीलकर्ता उषा सिन्हा ने संपत्ति क्रय की वह उसकी पूर्ण स्वामिनी थी, आगे कहा कि प्रतिवादी (वाद शीर्षक संख्या 140/1999 का वादी) ने गलत तरीके से और अवैध रूप से संपत्ति पर कब्जा पाने के लिए मुकदमा दर्ज किया था। प्रतिवादीगण द्वारा अपीलार्थी (संपत्ति का क्रेता) को कोई नोटिस नहीं दिया गया था और डिक्री अवैध, अकृत और शून्य थी, वह भी कपटपूर्ण, दुर्भिसंधिपूर्ण, सत्य एवं

वास्तविक तथ्यों को दबाकर प्राप्त की गयी थी, इसलिए प्रार्थना की गयी कि वाद शीर्षक संख्या 140/1999 में पारित डिक्री को धोखाधड़ी, मिलीभगत और क्षेत्राधिकार के बिना पारित होने से अमान्य घोषित किया जाये क्योंकि वाद संख्या 140/1999 के वादी का कोई अधिकार, स्वामित्व और हित संपत्ति में निहित नहीं था।

05. प्रतिवादी द्वारा एक लिखित बयान दायर किया गया था, जिसमें कहा कि मुकदमा चलने योग्य नहीं था, उसके विरूद्ध कार्यवाही का कोई आधार नहीं था और वाद शीर्षक संख्या 140/1999 में पारित डिक्री कानूनी और वैध थी।

06. यह कहा जा सकता है कि वाद शीर्षक संख्या140/1999 में पारित डिक्री के निष्पादन के लिए प्रतिवादी-वादी जो डिक्रीधारक था, द्वारा एक याचिका का निष्पादन मुकदमा संख्या 10/2002 दायर की गयी थी। वर्तमान अपीलकर्ता ने संहिता के आदेश 39 नियम 01 और 02 तथा आदेश 21 नियम 29 के साथ सपठित धारा-151 सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (आगे संहिता के रूप में संदर्भित) के तहत प्रतिवादी-डिक्रीधारक के विरूद्ध निषेधाज्ञा के लिए एक आवेदन दायर किया। अन्य बातों के अतिरिक्त यह तर्क देते हुए कि वाद शीर्षक संख्या 140/1999 में पारित एकपक्षीय डिक्री कानूनी और वैध नहीं थी और उसके विरूद्ध निष्पादित नहीं की जा सकती। आगे कहा कि अपील कर्ता द्वारा वाद शीर्षक संख्या

226/2001 के तहत मुकदमा दायर किया। जब तक उस मुकदमे का अंतिम निर्णय नहीं हो जाता, तब तक निष्पादन पर रोक लगानी चाहिए और डिक्रीधारक को अपीलकर्ता के कब्जे में हस्तक्षेप करने से रोका जाना चाहिए। (वाद शीर्षक संख्या 226/2001 का वादी) प्रतिवादी ने यह कहते हुए आवेदन का विरोध किया कि ऐसा कोई भी आवेदन संहिता के आदेश 21 नियम 29 के तहत नहीं हो सकता। 16 अगस्त, 2003 को अदालत द्वारा आवेदन खारिज कर दिया गया। आवेदन की अस्वीकृति के मद्देनजर अपीलकर्ता ने निष्पादन न्यायालय का रूख किया, जिसमें निष्पादन मामला संख्या 10/2002 लंबित था, जो विविध आवेदन के रूप में पंजीकृत था। केस नंबर 13/2003 आवेदन में अपीलकर्ता द्वारा यह कहा गया था कि उसने 15 फरवरी, 2000 को एक पंजीकृत विक्रय विलेख द्वारा संपत्ति क्रय की। उन्होंने वाद शीर्षक संख्या 140/1999 में एकपक्षीय डिक्री को रद्द करने के लिए, वाद शीर्षक संख्या 226/2001 भी दायर किया था, जो लंबित था, यदि उसके द्वारा दायर किए गए मूल मुकदमे के लंबित रहने के दौरान एकपक्षीय डिक्री निष्पादित की जाती है तो उसे अपूरणीय क्षति और हानि होगी। निष्पादन न्यायालय ने 20 नवम्बर, 2003 के आदेश के तहत आवेदन की अनुमति दी और विविध मामले के निपटारे तक निष्पादन मामला संख्या 10/2002 में आगे की कार्यवाही पर रोक लगा दी। 2003 के प्रकरण संख्या 13 से व्यथित होकर प्रत्यर्थी ने उच्च न्यायालय में

निगरानी याचिका प्रस्तुत की। उच्च न्यायालय ने निगरानी याचिका स्वीकार कर निष्पादन न्यायालय के आदेश को अपास्त किया जिसे अपीलार्थी ने भारतीय संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत चुनौती दी।

07. हमने दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्तागण को सुना।

08. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्तागण ने तर्क दिया कि प्रतिवादी द्वारा दायर पुनरीक्षण की अनुमति देने और निष्पादन मामले में कार्यवाही पर रोक लगाने के निष्पादन न्यायालय द्वारा पारित आदेश को रद्द करने में उच्च न्यायालय पूर्णरूपेण गलत था। निष्पादन न्यायालय इस परिस्थिति पर भरोसा करने में सही था कि जब अपीलकर्ता द्वारा वाद शीर्षक संख्या 140/1999 में प्रतिवादी के पक्ष में पारित एकपक्षीय डिक्री को लंबित रहते एक ठोस वाद दायर किया गया था जिसे रद्द कर दिया गया। ऐसे वाद, निष्पादन कार्यवाही पर रोक लगानी चाहिए। निष्पादन न्यायालय में इस तथ्य के आलोक में आदेश पारित किया कि अपीलकर्ता द्वारा दायर मुकदमा अंतिम निपटारे के लिए लंबित था जो विचार हेतु प्रासंगिक था और उक्त आदेश में उच्च न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए था। उच्च न्यायालय संहिता के आदेश 21 नियम 102 को लागू करने में और यह मानने में गलत था कि अपीलकर्ता को सुरक्षा मांगने का कोई अधिकार नहीं था। अधिवक्ता ने संहिता के आदेश 21 नियम 29 पर भरोसा किया जो उस स्थिति से संबंधित है जहां निर्णीत ऋणि द्वारा डिक्रीधारक के खिलाफ

एक ठोस मुकदमा दायर किया गया है और निष्पादन की कार्यवाही न्यायालय के समक्ष लंबित है, जब तक मुकदमे का अंतिम निर्णय नहीं हो जाता तब तक निष्पादन की कार्यवाही को आगे जारी रखने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए जिसके परिणामस्वरूप मुकदमा वस्तुतः खारिज हो जाएगा, इसलिए उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश निष्पादन न्यायालय द्वारा पारित आदेश को बहाल करके रद्द किया जाना चाहिए।

09. दूसरी ओर प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता ने उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश का समर्थन किया व कहा कि निष्पादन न्यायालय अपीलकर्ता द्वारा दायर आवेदन पर विचार करते हुए, विशेषकर संहिता के आदेश 21 नियम 29 के अंतर्गत इस प्रकार के आवेदन को अस्वीकार करने के पश्चात और उसे वाद शीर्षक संख्या 226/2001 के निस्तारण तक निषेधाज्ञा का अनुतोष जारी करने में पूर्णतः गलत था। संहिता का आदेश 21 नियम 102 यह स्पष्ट करता है कि नियम 98 और 100 अंतरिती वाद लंबिता पर लागू नहीं होते, यह नियम प्रासंगिक और सारगर्भित है, इनको विस्तार से उद्धृत किया जा सकता है। नियम 98 और 100 भी उस व्यक्ति के द्वारा अचल सम्पत्ति के कब्जे के लिए डिक्री के निष्पादन के लिए प्रतिरोध या बाधा पर लागू नहीं होगा, जिसे निर्णीत ऋणी ने मुकदमे की प्रस्तुति के बाद संपत्ति अंतरित की है, जिसमें डिक्री पारित की गयी थी, या ऐसे किसी भी व्यक्ति को बेदखल किया गया था।

10. इससे पहले कि हम वर्तमान अपील में दिए गए निर्णय पर वैधता या निर्णय की अन्यथा संदिग्धता पर विचार करे यह उचित होगा कि हम कानून के प्रासंगिक प्रावधानों पर ध्यान दें। संहिता के आदेश 27 नियम 97 से 106 'डिक्रीधार या क्रेता को कब्जे की सुपुर्दगी में बाधा' से संबंधित है। नियम 97 डिक्रीदार या नीलामी क्रेता को निष्पादन न्यायालय में शिकायत करने में सक्षम बनाता है। यदि किसी भी व्यक्ति द्वारा उसका विरोध किया जाता है या ऐसी सम्पत्ति पर कब्जा प्राप्त करने में बाधा उत्पन्न की जाती है तो ऐसा आवेदन प्राप्त करने में न्यायालय उस पर निर्णय लेने के लिए अग्रसर होगा। नियम 101 में न्यायालय से अपेक्षा की जाती है कि वह कार्यवाही के पक्षकरों या उनके प्रतिनिधियों के मध्य सम्पत्ति में अधिकार, स्वामित्व और हित से संबंधित समस्त प्रश्नों की पूर्ण जांच करे या उनका विनिश्चिय करे। न्यायालय तब ऐसे निर्णय पर आदेश पारित करेगा (नियम 98)। नियम 99 निर्णीत ऋणी के अतिरिक्त किसी भी व्यक्ति को जिसे डिक्रीदार या नीलामी क्रेता द्वारा बेदखल कर दिया गया ऐसी बेदखली की शिकायत के लिए न तो न्यायालय में आवेदन करने की अनुमति देता है। न्यायालय, ऐसे आवेदन प्राप्त होने पर उस आवेदन पर निर्णय लेने में अग्रसर होगा (नियम 98)। नियम 103 घोषित करता है कि नियम 98 या 100 के तहत दिए गए आदेश का समान बल या प्रभाव

होगा और अपील या अन्यथा समान शर्तों के अधीन होगा। इस प्रकार जैसे कि वह एक डिक्री था।

11. नियम 102 स्पष्ट करता है कि संहिता के आदेश 21 नियम 98 और 100 अंतरिती लंबिता पर लागू नहीं होते। ये नियम प्रासंगिक सारगर्भित है और इन्हें विस्तार से उद्धृत किया जा सकता है।

102. यह नियम अंतरिती वाद लंबिता पर लागू नहीं होता

नियम 98 और नियम 100 में कोई भी व्यक्ति को व्यक्ति और अपील सम्पत्ति के कब्जे के लिए डिक्री के निष्पादन प्रतिरोध या बाधा कारित नहीं करेगा जिसे निर्णय ऋणी ने मुकदमा संशोधित होने के पश्चात सम्पत्ति अंतरिती की है और उसमें डिक्री पारित की गयी थी या बेदखल करने।

12. नियम को मात्र पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह न्याय, साम्या और सद्विवेक पर आधारित है। यह माना जाता है कि निर्णीत ऋणी से अंतरिती को न्यायालय के समक्ष होने वाली कार्यवाही के बारे में जानकारी होती है, उसे ऐसी सम्पत्ति खरीदने से पहले सावधान रहना चाहिए, जो मुकदमे बाजी का विषय है। यह संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 की धारा-52 द्वारा मान्यता प्राप्त **'वाद लंबिता'** के सिद्धांत को मान्यता देता है। धारा-52 जम्मू और कश्मीर राज्य को छोड़कर भारत की सीमा के

भीतर अधिकार रखने वाले किसी भी न्यायालय में लंबित मुकदमे के दौरान संपत्ति अंतरण या केन्द्र सरकार द्वारा ऐसी सीमाओं से परे प्रस्तुत मुकदमे या कार्यवाही जो मिलीभगत से नहीं की गयी है और जिनमें अचल सम्पत्ति का कोई भी अधिकार सीधे और विशेष रूप से प्रश्नगत है, संपत्ति को अंतरित नहीं किया जा सकता या अन्यथा किसी भी पक्षकार द्वारा मुकदमा या कार्यवाही में निपटान किया जा सकता है, ताकि किसी डिक्री या आदेश के तहत किसी अन्य पक्षकार के अधिकारों को प्रभावित किया जा सके। इसमें न्यायालय के प्राधिकार के अधीन और ऐसी शर्तों को छोड़कर जो वह लागू कर सकता है, लागू किया जा सकता है।

स्पष्टीकरण - इस धारा के प्रयोजनों के लिए किसी मुकदमे या कार्यवाही की लंबिता को सक्षम अधिकार क्षेत्र वाले न्यायालय में वाद प्रस्तुत करने या कार्यवाही संस्थित होने की तारीख से प्रारंभ माना जायेगा और वाद या कार्यवाही की समाप्ति तक जारी रहेगा। कार्यवाही को अंतिम डिक्री या आदेश द्वारा निपटाया गया है और ऐसी डिक्री या आदेश की पूर्ण तुष्टि या उन्मुक्ति हो गयी है या किसी भी कानून द्वारा उसके निष्पादन के लिए निर्धारित सीमा अवधि की समाप्ति के कारण अप्राप्य हो गयी है। जिस संपत्ति के संबंध में मुकदमा लंबित है उसके क्रेता की मदद के लिए हाथ बढ़ाये, यदि अंतरिती दौराने वाद को अनुचित, असम्यक या अवांछनीय सुरक्षा प्रदान की जाती है तो डिक्रीधारक, कभी भी उसकी डिक्री के परिणाम फल का

अहसास नहीं कर सकेगा। प्रत्येक बार जब डिक्रीधारक डिक्री को निष्पादित कराने के लिए न्यायालय से निर्देश मांगता है तो निर्णीत ऋणी या उसका अंतरिती संपत्ति अंतरित कर देगा और नया अंतरिती प्रतिरोध या बाधा उत्पन्न करेगा। उक्त स्थिति से बचने के लिए यह नियम बनाया गया है।

13. डेढ़ सदी से पहले बेलामी बनाम सबीन में (1857) 1 डीजी और जे 566: 44 ईआर 847, लोर्ड क्रेनवॉथ, एल.सी. में घोषित किया गया कि जहाँ किसी विशेष संपत्ति के अधिकार के संबंध में वादी एवं प्रतिवादी के मध्य वाद लंबित हो, मानवीय आवश्यकता के अनुसार मुकदमे में न्यायालय का निर्णय न केवल वाद के पक्षकारों पर बल्कि उन पर भी बाध्यकारी होगा जो वाद लंबिता के दौरान किए गए व्ययन के माध्यम से उसके अधीन स्वामित्व प्राप्त करते हैं। भले ही ऐसे अजनबी लोगों को लंबित कार्यवाही के बारे में सूचना थी या नहीं। यदि ऐसा नहीं होता तो इस बात की कोई निश्चितता नहीं होती कि मुकदमा कभी समाप्त होगा।

14. अंगीकृत उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए अभिव्यक्ति 'निर्णीत ऋणी से अंतरिती' की व्याख्या 'निर्णीत ऋणी से स्थानांतरितकर्ता से अंतरिती' के रूप में की गयी है। (विजयलक्ष्मी लेदर इण्डस्ट्रीज प्राईवेट लिमिटेड बनाम के. नारायणन, ललिता, एआईआर 2003 मद्रास 203)।

15. विजयलक्ष्मी लेदर इण्डस्ट्रीज में यह आग्रह किया गया है कि संहिता के आदेश 21 नियम 98 या 100 के प्रावधान निर्णीत ऋणी के अंतरिती तक सीमित थे, यह संव्यवहार की श्रृंखला तक विस्तारित नहीं हो सकते थे, जहाँ निर्णीत ऋणी ने उसका हित हस्तांतरित कर दिया था।

16. वैधानिक प्रावधानों और विधिक सिद्धांतों का हवाला देते हुए न्यायालय में यह कहते हुए वाद को खारिज कर दिया कि

यदि अपीलकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता के इस तर्क को स्वीकार किया जाये तो हम कानून की मंशा के संबंध में अपनी आंखें बंद कर रहे हैं। कानून के प्रावधानों की व्याख्या करते समय यह स्पष्ट है कि न्यायालय को अवश्य ही ऐसा करना चाहिए, प्रावधानों को प्रभावी बनाने के लिए कानून के आशय को उचित महत्व दे। यदि कोई संकीर्ण व्याख्या की जाती है और उससे विधि का उद्देश्य निष्फल हो रहा है, तो न्यायालयों को ऐसी व्याख्याओं से बचने के लिए सतर्क रहना चाहिए। यदि हम संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा-52 और संहिता के आदेश 21 नियम 102 को देखें, तो यह बहुत स्पष्ट है कि विधायिका की जिस मंशा के साथ यह कानून बनाया गया वह यह है कि कार्यवाही में किसी एक पक्ष का अधिकार लंबित है, उससे पहले न्यायालय को उसी कार्यवाही के दूसरे पक्ष की कार्यवाही से पूर्वाग्रहित या दूर नहीं किया जा सके या प्रतिकूल रूप से प्रभावित नहीं किया जा सके। इस प्रकार के प्रतिबंध के अभाव में कार्यवाही में एक पक्ष

दूसरे पक्ष पर प्रतिकूल प्रभाव डालने के लिए उन संपत्तियों का निपटारा कर सकता है, जो वाद की विषय वस्तु है या किसी तृतीय पक्ष को प्रभावित कर सकता है और न्यायालय से दूर रख सकता है। वाद के पक्ष की ऐसी कार्यवाहियों से दूसरे पक्ष को और अधिक कठिनाई का सामना करना पड़ेगा। मुकदमे के पक्ष के ऐसे प्रतिकूल कृत्यों से बचने के लिए ही यह प्रावधान अस्तित्व में है। ऐसे वैधानिक प्रतिबंधों के होते हुए उस सम्पत्ति के लिए जो कार्यवाही के एक पक्ष द्वारा जो मुकदमे की विषय वस्तु है विधि के प्रावधानों को प्रभावी बनाने के लिए न्यायालय कर्तव्यबद्ध है।

17. उपर्युक्त टिप्पणियां हमारी राय में कानून का सही रूप प्रस्तुत करती हैं।

18. इस प्रकार यह सुस्थापित विधि है कि मुकदमे के लंबित रहने के दौरान वाद की संपत्ति के क्रेता को सक्षम न्यायालय द्वारा पारित डिक्री के निष्पादन का विरोध करने या बाधा डालने का कोई अधिकार नहीं है। **'वाद लंबिता'** का सिद्धांत किसी पक्ष को उस संपत्ति के निपटारे से रोकता है जो वाद का विषय है। वाद लंबिता को स्वयं क्रेता के लिए रचनात्मक नोटिस के रूप में माना जाता है, कि वह लंबित वाद में पारित होने वाली डिक्री से बंधा हुआ है। इसलिए नियम 102 स्पष्ट करता है कि अंतरिती दौराने वाद लंबिता द्वारा प्रतिरोध या बाधा नहीं की जानी चाहिए, यह घोषित करता है कि यदि निर्णीत ऋणी के अंतरिती वाद लंबिता द्वारा प्रतिरोध किया जाता

है या बाधा कारित की जाती है तो वह संहिता के आदेश 21 नियम 98 या 100 का लाभ नहीं मांग सकता।

19. सिल्वरलाइन फोरम प्राईवेट लिमिटेड बनाम राजीव ट्रस्ट, (1998) 3 एससीसी 723 में न्यायालय ने यह माना कि जहां प्रतिरोध होता है या किसी अंतरिती वाद लंबिता द्वारा बाधा उत्पन्न की जाती है तो न्याय निर्णयन का दायरा इस प्रश्न तक ही सीमित है कि क्या वह लंबिता के दौरान अंतरिती था। एक मुकदमा जिसमें डिक्री पारित की गयी थी, एक बार जब निष्कर्ष सकारात्मक हो जाता है तो निष्पादन न्यायालय को यह मानना चाहिए कि उसे प्रतिरोध करने या बाधा डालने का कोई अधिकार नहीं है और ऐसा व्यक्ति निष्पादन न्यायालय से सुरक्षा की मांग नहीं कर सकता।

20. न्यायालय ने कहा, यह सच है कि संहिता के आदेश 21 नियम 99 किसी भी व्यक्ति के लिए तब तक उपलब्ध नहीं है, जब तक उसे डिक्रीधारक द्वारा अचल सम्पत्ति से बेदखल नहीं कर दिया जाता। नियम 101 में कहा गया है कि सभी प्रश्न नियम 97 के तहत आवेदन पर कार्यवाही के लिए पक्षकारों के बीच उत्पन्न होते हैं, तो नियम 99 के तहत निष्पादन न्यायालय द्वारा अवधारित किया जाएगा, यदि ऐसे प्रश्न आवेदन के निर्णय के लिए प्रासंगिक है और डिक्री का तृतीय पक्ष जो प्रतिरोध करता है, यदि निर्णय के रूप में प्रतिभूत किया जाता है तो डिक्री के

निष्पादन में उसके द्वारा किए गए प्रतिरोध या बाधा का परिणाम, नियम 101 की परिधि में आएगा। इसमें कोई संदेह नहीं है कि यदि प्रतिरोध निर्णीत ऋणी के अंतरिती लंबिता वाद द्वारा किया गया था, तो निर्णय का दायरा सीमित प्रश्न तक सिमट जाएगा कि क्या वह ऐसा अंतरिती है। उस बिंदू के संबंध में सकारात्मक निष्कर्ष पर निष्पादन न्यायालय को यह मानना होगा कि संहिता के नियम 102 में निहित स्पष्ट भाषा के मद्देनजर उसे विरोध करने का कोई अधिकार नहीं है। अग्रिम तर्क उठाने से ऐसे अंतरिती का बहिष्कार संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा-52 में निहित छायांकित हितकारी सिद्धांत पर आधारित है। **(बल दिया गया)**।

[देखें. सरविंदर सिंह बनाम दलीप सिंह, (1996) 5 एससीसी 539]

21. उपर्युक्त उपधारण हमसे सम्मानित सहमति में है, जो सिल्वर लाईन फोरम में इस न्यायालय द्वारा निर्धारित किया। हमारी राय में यह इस सिद्धांत पर आधारित है कि मुकदमे के लंबित रहने के दौरान निर्णीत ऋणी से संपत्ति क्रय करने वाले व्यक्ति के पास विरोध करने या बाधा डालने या निष्पादन पर आपत्ति करने के लिए कोई स्वतंत्र अधिकार नहीं है। कार्यवाही के लंबित रहते निर्णीत ऋणी के अंतरिती के उदाहरण पर प्रतिरोध को उसके अधिकार में किसी व्यक्ति द्वारा प्रतिरोध या बाधा नहीं कहा जा सकता, इसलिए वह उसके दावे का न्याय निर्णयन कराने का हकदार नहीं है।

22. संहिता के नियम 102 को लागू करने के लिए डिक्रीधारक को यह दर्शित करना पर्याप्त है कि कब्जे का विरोधकर्ता या बाधक व्यक्ति उस वाद के प्रारंभ होने के पश्चात सम्पत्ति पर उसके अधिकार का दावा कर रहा है, जिसमें डिक्री पारित की गयी थी और उसके विरूद्ध निष्पादन की मांग की गयी थी। निर्णीत ऋणी की यदि शर्त पूरी हो जाए तो मामला नियम 102 के अंतर्गत आता है, ऐसा आवेदक संहिता के आदेश 21 नियम 98 या 100 पर भरोसा नहीं कर सकता।

23. जहाँ तक हस्तगत वाद का प्रश्न है तथ्यों के संबंध में अब कोई विवाद नहीं है। जैसा पूर्व में उल्लेख किया गया है। वाद शीर्षक संख्या 140/1999 प्रतिवादी-वादी द्वारा 10 अप्रैल, 1999 को संस्थित किया गया था। संपत्ति के संबंध में मुकदमा लंबित था, वाद विचाराधीन था, तत्पश्चात अपीलकर्ता ने वाद लंबित रहते 15 फरवरी, 2000 को पंजीकृत विक्रय विलेख द्वारा मूल प्रतिवादी संख्या चार और पांच से संपत्ति क्रय की। यह भी विवाद नहीं है कि 24 मई, 2001 को प्रतिवादीगण के विरूद्ध एकपक्षीय डिक्री पारित की गयी थी। उक्त दशा में हमारी सुविचारित राय में **'वाद लंबिता'** का सिद्धांत विचाराधीन संव्यवहार पर लागू होगा और उच्च न्यायालय इस मामले में पूर्णतः सही था, कि मामला संहिता के आदेश 21 नियम 102 के भीतर आता है। अपीलकर्ता दायर मुकदमे की लंबिता के लिए संरक्षा नहीं मांग सकती थी। निष्पादन न्यायालय द्वारा निष्पादन

कार्यवाही पर रोक लगाना अनुचित था। इसलिए निष्पादन न्यायालय के आदेश को रद्द करने में उच्च न्यायालय सही था।

24. संहिता का आदेश 21 नियम 29 ऐसे मामलों का वर्णन करता है जिसमें डिक्रीधारक के विरूद्ध निर्णीत ऋणी द्वारा वाद संस्थित किया गया और वाद लंबिता के मामले में इसकी कोई प्रासंगिकता नहीं है, जिसमें कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान संपत्ति का अंतरण निर्णीत ऋणी द्वारा अजनबी व्यक्ति को किया गया है। उच्च न्यायालय ने हमारी राय में सही माना कि अपीलकर्ता को वाद के लिए अजनबी नहीं कहा जा सकता क्योंकि वह प्रतिवादी संख्या चार और पांच के माध्यम से अधिकार, स्वामित्व और हित का दावा कर रही थी। उनके विरूद्ध वाद लंबित था इसलिए यह माना जाना चाहिए कि वह उस वाद से परिचित थी, जो अपीलकर्ता के पूर्ववर्ती के विरूद्ध वर्तमान प्रतिवादी द्वारा वाद शीर्षक संख्या 140/1999 के रूप में सक्षम न्यायालय में संस्थित किया था जैसा बेलामी में कहा गया है। यह तथ्य कि कार्यवाही के लंबित रहते संपत्ति के क्रेता को वाद अपील या अन्य कार्यवाही के बारे में कोई जानकारी नहीं थी, पूर्णतः सारहीन है। वह इस आधार पर डिक्री के निष्पादन का विरोध नहीं कर सकता। जैसा कि सिल्वरलाईन फोरम में देखा गया कि ऐसे मामलों में एक ज्वलंत जांच यह है कि क्या अंतरिती निर्णीत ऋणी के माध्यम से सही होने का दावा कर रहा है। हमारे फैसले में उच्च न्यायालय का यह कहना भी सही था, कि

यदि अपीलकर्ता मुकदमे में सफल हो जाता है और उसके पक्ष में डिक्री पारित हो जाती है तो वह कानून के अनुसार उचित कार्यवाही और क्षतिपूर्ति हेतु आवेदन कर सकती है। हालांकि डिक्रीदार को उसके द्वारा प्राप्त डिक्री को क्रियान्वित करने से नहीं रोकता, क्योंकि अपीलकर्ता एक क्रेता लंबिता वाद है और उसे प्रतिरोध या बाधा उत्पन्न करने का अधिकार नहीं है। उसके अधिकारों को डिक्री में स्पष्ट नहीं किया गया है। संहिता का आदेश 21 नियम 102 लागू होता है इसलिए वह उसके द्वारा दायर वाद के लंबित रहने के दौरान निष्पादन का विरोध नहीं कर सकती। उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश को अवैध, गैरकानूनी या अन्यथा विधि के प्रतिकूल नहीं कहा जा सकता।

25. उपर्युक्त कारणों से अपील खारिज किए जाने योग्य है, तद्नुसार खारिज की जाती है। प्रकरण के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर खर्चे के संबंध में कोई आदेश नहीं दिया जाएगा।

एस.के.एस. अपील खारिज

चेतावनी : यह अनुवाद आर्टिफिशियल इन्टेलीजेन्स टूल 'सुवास की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी माधवी गोस्वामी, (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरणः- यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के लिए सिमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और अधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणित होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।